# इकाई 4 कुमारस्वामी, ए. के. सरण, धर्मपाल, विद्यानिवास मिश्र

**इकाई की रूप रेखा**


4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 कुमारस्वामी

- 4.2.1 परिचय
- 4.2.2 लेखनकर्म
- 4.2.3 योगदान
- 4.2.4 विचार एवं अध्ययन विधि

4.3 ए. के. सरण

- 4.3.1 परिचय
- 4.3.2 लेखनकर्म
- 4.3.3 योगदान
- 4.3.4 विचार एवं अध्ययन विधि

4.4 धर्मपाल

- 4.4.1 परिचय
- 4.4.2 लेखनकर्म
- 4.4.3 योगदान
- 4.4.4 विचार एवं अध्ययन विधि

4.5 विद्यानिवास मिश्र

- 4.5.1 परिचय
- 4.5.2 योगदान
- 4.5.3 विचार एवं अध्ययन विधि

4.6 पारिभाषिक शब्दावली

4.7 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

4.8 बोध प्रश्न


## 4.0 उद्देश्य

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई को पढ़ने के बाद आप –

- कुमारस्वामी के जीवन तथा रचनाओं का परिचय, अध्ययन की विधि, प्रतिपादन एवं महत्त्व को जान सकेंगे।
- ए. के. सरण के जीवन तथा रचनाओं का परिचय, अध्ययन की विधि, प्रतिपादन एवं महत्त्व को जान सकेंगे।
- विद्यानिवास मिश्र के जीवन तथा रचनाओं का परिचय, अध्ययन की विधि प्रतिपादन एवं महत्त्व का जान सकेंगे।
- धर्मपाल के जीवन तथा रचनाओं का परिचय, अध्ययन की विधि, प्रतिपादन एवं महत्त्व को जान सकेंगे।

## 4.1 प्रस्तावना

प्रिय विद्यार्थियो! अभी तक आप तिलक, गाँधी, मालवीय, हेडगेवार, क्षेत्रेशचन्द्र चट्टोपध्याय, श्री अरविन्द, बंकिमचन्द्र चटर्जी, टैगोर, वासुदेवशरण अग्रवाल, श्री राजगोपालाचारी, विशुद्धानंद पाठक जैसे प्रमुख भारतीय भारतविदों के प्रतिपादन एवं वैशिष्ट्य का अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत इकाई में आप जिन भारतविटों का अध्ययन करने जा रहे हैं, वे स्वतन्त्र भारत के प्रमुख भारतविद हैं, जिन्होंने साहित्यिक, सामाजिक तथा ऐतिहासिक अध्ययनों में भारत की पश्चिमी जगत् द्वारा दी गई जड़ अवधारणा को खण्डित करते हुये भारत को देखने की एक नयी दृष्टि प्रदान की है।

## 4.2 कुमारस्वामी

### 4.2.1 परिचय

आनन्द केंटिज कुमार स्वामी (22 अगस्त् 1877 से 9 सितम्बर 1947) का जन्म कोलम्बो में हुआ था। इनके पिता मुत्तु कुमारस्वामी तथा मां एक ब्रिटिश महिला थी।

लन्दन विश्वविद्यालय से ग्रेजुएशन कर कुमारस्वामी मिनरोलाजिकल सर्वे ऑफ सिलोन के निदेशक पद पर चुने गये तथा बोस्टन म्यूजियम में इण्डियन आर्ट के क्यूरेटर के रूप में 1906 से 1917 तक कार्य किये। इस दौरान वे भारतीय कलाओं पर व्याख्यान देते रहे और भारतीय कलाओं के अध्ययन के लिए कई सोसाईटियों की स्थापना किये। 1938 में भारत की स्वतन्त्रता के लिए बनी राष्ट्रीय समिति के वे अध्यक्ष भी रहे। भारतीय दर्शन, धर्म, कला प्रतिमाविज्ञान, पेंटिंग तथा साहित्य पर उनके द्वारा किये विश्लेषण बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। इसी प्रकार संगीत, विज्ञान तथा इस्लामिक कलाओं पर किया गया उनका कार्य भी अति महत्त्वपूर्ण है। कुमारस्वामी भारतीय कला के उत्कृष्टतम् विवेचक के रूप में संसारभर में आप विख्यात रहे।

### 4.2.2 लेखनकर्म

कुमारस्वामी का चिन्तन उनकी कई पुस्तकों में संग्रहीत है जिनके नाम इस प्रकार हैं–1. आर्ट एवं स्वदेशी 2. बुद्धा एण्ड दि गास्पेल आफ बुद्धिज्म 3. किश्चियन एण्ड ओरियण्टल फिलासपी, ऑफ आर्ट, 4. द डांस ऑफ शिवा 5. अर्ली इण्डियन आर्किटेक्चर – सिटिज एण्ड सिटिगेट्स 6. अर्ली इण्डियन आर्किटेक्चर – पैलेसेज 7. द एट नायिकाज 8. इलेमेंट्स ऑफ बुद्धिस्ट आइकोनोग्राफी 9. एसेज इन नेशनल आइडलिज्म 10. इन्ट्रोडक्शन टू इण्डियन आर्ट 11. हिदुइज्म एण्ड बुद्धिइज्म 12. ए न्यू अप्रोच टू वेदाज 13. विश्वकर्मा 14. स्प्रिचुअल अथारिटी एण्ड टेम्पोरल पावर इन द इण्डियन थियरी ऑफ गर्वनमेण्ट 15. टाइम एण्ड इटरनिटी आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

### 4.2.3 योगदान

एक भारतविद् के रूप में कुमारस्वामी का योगदान कला के क्षेत्र में अभूतपूर्व है, वे हमें तुलनात्मक अध्ययन प्रणाली द्वारा भारत को जानने के लिए सशक्त एवं समृद्ध वैचारिकी प्रदान करते हैं। कुमारस्वामी के अध्ययन से भारतीय इतिहास एवं कला लेखन के दृष्टिकोण में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आया।

### 4.2.4 विचार एवं अध्ययनविधि

कुमारस्वामी के लिए भारत के बोध का माध्यम वेदान्त के रास्ते से गुजरता है वेदान्त वेद के सार है जिससे भारत की समग्र सभ्यता खड़ी हुई है। धर्म सम्बन्धी सभी पक्षों

की व्याख्या वेदान्त से ही सम्भव है। वेदान्त सामाजिक सम्बन्धों में सन्तुलन, राजनीतिक जीवन में तटस्थता तथा आर्थिक जीवन में त्याग एवं सेवा का प्रतिपादन करता है। कुमार स्वामी के लिए वैदिक संस्कृति तथा बौद्ध संस्कृति एक दूसरे के पूरक हैं। अपनी पुस्तक 'हिन्दूइज्म एण्ड बुद्धिज्म' में वे इसके समानता के तत्त्वों/पक्षों को उद्घाटित करते हैं। धम्मपद में ब्राह्मण की परिभाषा दी गई है। बुद्ध ने भी जन्म से किसी को ब्राह्मण तथा शूद्र नहीं स्वीकार किया है। कुमार स्वामी की मान्यता है कि मुक्ति के अलावा सांसारिक उन्नति भी समाज के लिए आवश्यक है। सांसारिक उन्नति के लिए सबसे अधिक ज्ञानी और योग्य पुरुष का नेतृत्व करना ही श्रेयस्कर है और यह मनुष्य मात्र की भावनाओं ओर अनुभवों से जुड़ा है न कि किसी व्यक्ति विशेष से। भारतीय परम्परा में मानवीय कलाओं को मनुष्य के आन्तरिक और वाह्य जीवन के द्वंद्वों का समाधान करते हुये आत्म तत्त्व तक पहुँचने का साधन माना गया है। शंकराचार्य के कथन को उद्धृत करते हुये वे कहते हैं कि सारे गीत ईश्वरीय हैं और वे आत्मा एवं पदार्थ की अविभाज्य एकता की लय को ही प्रदर्शित करते हैं।

अपने निबन्ध 'स्टेटस ऑफ इंडियन वूमन' में वे भारतीय एवं प्राच्य समाज में स्त्रियों की पारम्परिक भूमिका एवं आधुनिकता के प्रभाव में आये उसके विचलन की मीमांसा करते हैं। वे कहते है कि पारम्परिक समाज में सतीत्व एवं मातृत्व पर विशेष बल था और परिवार में उसकी केन्द्रीय भूमिका थी। भारतीय परम्परा में आध्यात्मिक स्वतन्त्रता महत्त्वपूर्ण थी न कि आत्म प्रदर्शन। भारतीय मूल्य व्यक्ति के कर्त्तव्य पालन को ही धर्म मानता रहा है। परिवार की भारतीय समाज में केन्द्रीय भूमिका रही है और विवाहित जीवन में पति–पत्नी मिलकर एक इकाई के रूप में प्रतिष्ठित होते हैं। समर्पण, त्याग प्रेम, वात्सल्य महिलाओं का प्रकृति प्रदत्त स्वभाव है, आधुनिक सभ्यता उन्हें पुरुषवत बना देना चाहती है। वे भारतीय मिथकों राधा, सीता के ही नहीं बल्कि ग्रीक/पश्चिमी मिथकों ब्रिनाहिल्ड दियेद्रा, अलकेस्टिस के भी महत्त्व की व्याख्या इन्हीं मूल्यों के आधार पर करते हैं।

शासन–प्रशासन की भारतीय अवधारणा भी भारतीय कला समाज, व्यवस्था की भाँति आध्यात्मिकता तथा इहलौकिकता की युगलबन्दी से निर्मित हुई है। यही कारण है कि राजत्व का दैवीय सिद्धान्त भारतीय राजव्यवस्था के मूल तत्त्व के रूप में प्रवाहवान रहा है। ध्यातव्य है, यह व्यवस्था एक तरफ तो राजा के इस्लामी देवत्व सिद्धान्त के बिल्कुल विपरीत है जिसके अनुसार पृथ्वी पर राजा परमपिता का उत्तराधिकारी है, जो शासन करने के लिये स्वतन्त्र है, जबकि दूसरी तरफ क्रिश्चियन राजत्व के सिद्धान्त के भी विपरीत है, जिसमें राजा अपने दायित्वों को भूल गया है। राजत्व सिद्धान्त में प्रशासन राजा और त्यागी बौद्धिक वर्ग के साथ दाम्पत्य सम्बन्ध के समान बँधा हुआ है। यह विचार शाससन के लिए सर्वाधिक उपयुक्त है। यह भारतीय समाज व्यवस्था की विशेषता है।

कुमारस्वामी भारत की कलाओं, मिथकीय चरित्रों, कलारूपों के प्रतीकात्मक स्वरूपों की व्याख्या विश्व के प्रमुख संस्कृतियों से इनकी तुलना के माध्यम से करते हैं। भारतीय कला के पश्चिमी कला–दर्शन से मौलिक अन्तर को प्रस्तुत करते हुए भारतीय कला के वास्तविकता के उद्घाटन की यह विधि भारत को जानने हेतु अति महत्त्वपूर्ण है। अपनी पुस्तक 'दी डांस ऑफ शिवा' में वे शिव की नटराज मूर्ति की मुद्रा की व्याख्या के माध्यम से आपने वैदिक परम्परानुसार ब्रह्माण्ड के अभिव्यक्तिकरण के प्रतीकों पर प्रकाश डाला है। शिव की मूर्ति ब्रह्माण्डीय गति का प्रतीक है। कुमारस्वामी के अनुसार इस नृत्य का उद्देश्य–अनगिनत जीवों को विभ्रम से मुक्ति प्रदान करना है। अपने

निबन्ध 'इण्डियन इमेजेज विथ मेनी आर्म्स' में वे व्यक्ति के बहुमुखी कार्य सम्पादन की क्षमता की व्याख्या करते हैं। उनकी अध्ययन–विधि द्वारा प्राप्त भारतीय कला की व्याख्या हमें प्रतीकों का वास्तविक अर्थ प्रदान करता है। भारत धर्म–प्राण देश है। धर्म हमें जीवन में विश्रान्ति देता है इसलिए धार्मिक सिद्धान्तों का सूक्ष्म व्यवहार कला रूपों में उपस्थित है। कुमारस्वामी भारत के वैशिष्ट्य के उद्घाटन के लिए पश्चिमी कला सिद्धान्तों, दर्शनों तथा कला रूपों से इसकी तुलना करते हैं।

अपने निबन्ध 'इण्डियन म्यूजिक' में वे भारतीय एवं पाश्चात्य संगीत परम्पराओं के विविध पक्षों की तुलना करते हैं और बताते हैं कि भारतीय संगीत निर्वैयक्तिक है। जिसके कारण शासन–प्रशासन में आन्तरिक अनुशासन और बाह्य संकट के रक्षार्थ सामर्थ्य संग्रह किया जाता रहा है। जिस प्रकार अग्नि और पुरोहित सभी देवताओं के लिये हविष्य पहुँचाने का माध्यम बनते है, उसी प्रकार प्रशासन का बौद्धिक वर्ग, प्रशासन के सभी तत्त्वों के मध्य सामंजस्य स्थापित करता है। विस्तृत अध्ययन के लिये उनकी पुस्तक देखी जा सकती है।

**बोध प्रश्न**

1. आनन्द कुमारस्वामी किस प्रकार के भारतविद हैं।
   (क) पुरातत्त्व एवं इतिहास (ख) कला एवं मिथक परम्परा
   (ग) लोक अध्ययन (घ) पूर्व औपनिवेशिक अध्ययन
2. निम्न में से कौन सी पुस्तक कुमारस्वामी द्वारा लिखित नहीं है–
   (क) द डांस आफ शिवा (ख) अर्ली इण्डियन आर्कीटेक्चर
   (ग) हिन्दूइज्म एँड बुद्धिज्म (घ) ब्यूटीफुल ट्री
3. निम्न में से कौन सा निबन्ध आनंद कुमार स्वामी का है–
   (क) छितवन की छांह (ख) गाँव का मन
   (ग) स्टेटस ऑफ इण्डियन वूमन (घ) तुम चन्दन हम पानी

## 4.3 अवध किशोर सरण (1922–2003)

### 4.3.1 परिचय

ए. के. सरण दस वर्ष की अवस्था में ही आनन्द कुमारस्वामी केसम्पर्क में आ गये थे और कुमारस्वामी से प्रभावित होकर ही वे अपने अध्ययन में पारम्परिक हिन्दू–दृष्टि के आधुनिक तत्त्वों को शामिल करते हैं। इनके लेखन को पढ़ने से यह भी ज्ञात होता है कि वे फ्रिथजॉफ शुओन से भी प्रभावित रहे जो कि बीसवीं सही के प्रमुख दार्शनिक हैंऔर जिन्होंने तत्त्वमीमांसा की खोज में उपनिषद्, बाइबिल, भगवद्गीता, कुरान के साथ ही प्लेटो, इमर्शन, गोथे और शिलर जैसे दार्शनिकों का अध्ययन करते हुए अपने को भगवद्गीता और वेदान्त की दुनिया में डूबो लिया था। उनके लेखन में धर्म का अभ्यास करने के साथ–साथ आध्यात्मिक सिद्धान्त की सार्वभौमिकता पर बल दिया गया है। इसके साथ ही वे सद्गुणों तथा सुन्दरता के महत्त्व पर बल देते हैं।

इस प्रकार के उत्कृष्ट विचारकों एवं दार्शनिकों से प्रभावित ए.के0सरण ने समकालीन समय में हिन्दू परम्परा की उत्कृष्टता को पुनः प्रतिपादित किया और हिन्दू – परम्परा की निर्विकल्पता को स्थापित किया है। ए. के. सरण का अकादमिक जीवन लखनऊ विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के प्रोफेसर के रूप में प्रारम्भ हुआ और बाद में उन्होंने

कार्डिनल स्ट्रीच विश्वविद्यालय, विन्सकासिंन में शान्ति और न्याय में गैमियल के पद पर कार्य किया।

### 4.3.2 लेखनकर्म

ए. के. सरण का चिन्तन उनकी कई पुस्तकों में संग्रहीत है, जिनके नाम इस प्रकार हैं– 'सम्यक्–वाक्' विशेष श्रृंखला : इस श्रृंखला में दस पुस्तकों का प्रकाशन उच्च तिब्बती अध्ययन संस्थान, सारनाथ, वाराणसी द्वारा किया गया है, जिनमें 'ट्रेडिशनल थाटः टूवार्द्स एन एक्जिओमेटिक अप्रोच', 'सोशियलॉजी ऑफ नालेज एण्ड ट्रेडिशनल थॉट', 'ट्रेडिशनल विजन ऑफ मैन', 'आन दी थीअरिज ऑफ सेक्यूलरिज्म एण्ड मार्डनाइजेशन' तथा 'हिन्दूइज्म इन कण्टेम्पोरेरी इण्डिया' महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अतिरिक्त आपकी पुसतकों में 'इन्वायरमेण्टल साइकालजी' महत्त्वपूर्ण है।

### 4.3.3 योगदान

ए. के. सरण मूलतः समाज शास्त्री थे तथा हिन्दू समाज शास्त्री के रूप में बी0 के. सरकार, आर0 एन0 मुखर्जी की परम्परा में आते हैं।आप पश्चिमी समाजशास्त्री चिन्तन का सम्यक् मूल्यांकन करते हुए हिन्दू सिद्धान्तों को आधुनिक मूल्यबोध के सन्दर्भ में को प्रकाश में लाने हेतु धर्म समाजशास्त्री तथा समाज–दार्शनिक विधि से अपने विचार को रखते हैं।आपकी प्रसिद्ध पुस्तक 'हिन्दूइज्म' में हिन्दू सभ्यता के मूल सिद्धान्तों की अभिनव व्याख्या प्राप्त होती है इस पुस्तक का प्रारम्भ ही माडर्न सोशियलॉजीकल मेथाडॉलाजी से होता है।

### 4.3.4 विचार एवं अध्ययन विधि

आप हिन्दूत्व का प्रारम्भिक बिन्दु ईश्वर या ब्रह्माण्ड मीमांसा को नहीं मानते बल्कि एक साधारण किन्तु एक महत्त्वपूर्ण प्रश्न 'मैं कौन हूँ' को मानते है। इस प्रश्न की व्याख्या करते हुए आप समाज के प्रारम्भिक सिद्धान्तों की ओर आगे बढ़ते हैं और बताते हैं कि यह प्रश्न व्यक्तिगत होते हुए भी उस स्तर पर निर्वैयक्तिक बन जाता है जहाँ देश काल, जाति, धर्म, राजनीति सभी गौण हो जाते हैं। हिन्दूत्व में वर्णित सिद्ध पुरुषों के जीवन इसके साक्षात् उदाहरण हैं।

पारम्परिक हिन्दू समाज व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों की अभिनव व्याख्या के क्रम में आप इन्द्र और वृत्र के आख्यान की व्याख्या करते हुए 'ऋत' और 'अनृत' की संकल्पना को स्पष्ट करते हैं। 'ऋत' ब्रह्माण्ड के क्रम, वास्तविकता एवं सत्य का प्रतिरूप है जबकि 'अनृत' अव्यवस्था, अवास्तविकता, असत्य एवं अराजकता का प्रतिरूप है।

वर्णाश्रमधर्म की व्याख्या में आप लिखते हैं– वर्णव्यवस्था मनुष्य का मूलस्वभाव है। यह विश्व त्रिगुणात्मक है अतः मनुष्य भी त्रिगुणात्मक है जिस व्यक्ति में जिस गुण की प्रधानता होती है वह उस वर्ण का बन जाता है।

पुरुषार्थ मानवीय जीवन का लक्ष्य है। पुरुषार्थ के समकक्ष आप कीर्केगार्द द्वारा मानव जीवन के तीन चरण के सिद्धान्त को उपस्थापित करते हैं। इस क्रम में आप 'काम' को सौन्दर्य, 'अर्थ' को नैतिक तथा 'धर्म' को धार्मिकता के रूप में देखते हैं जबकि चौथे पुरुषार्थ 'मोक्ष' को आप मनुष्य की सभी प्रेरणाओं तथा उद्देश्यों की अन्तिम परिणतिके रूप में देखते हैं जो मानव जीवन में केवल प्रेम और विश्वास के साथ जुड़ता है यह एक प्रकार से 'Socratic Platoncic Sense'है तथा व्यक्त तथा अव्यक्त के मध्य दृष्टिगोचर सातत्य भग्नता के रहस्य को प्रतीकरूप में अभिव्यक्त करता है।

इसी प्रकार से स्वधर्म की व्याख्या करते हुए आप स्वधर्म को व्यक्ति के सामाजिक दायित्व से जोड़ते हैं, जो एक तरफ वर्णाश्रम धर्म से जुड़ता है तो दूसरी तरफ मनुष्य के कार्मिक बन्धन से व्याख्यायित होता है। इस रूप में कर्म का सिद्धान्त आत्मविद्या तथा समाजविद्या का आधार बनता है।

इस प्रकार ए. के. सरण का भारत बोध 'मैं कौन हूँ' जैसे तात्त्विक प्रश्न से आरम्भ होता है और पूरे मानव जीवन से जुड़े हुये सभी सामाजिक प्रश्नों की समाजशास्त्रीय व्याख्या करते हुये, इसी प्रश्न 'मैं कौन हूँ' के उत्तर में ही समाप्त हो जाता है, जहाँ सर्वमंगल, सर्वकल्याण, विश्रान्ति, मुक्ति, जैसी संकल्पनाओं की वर्तमान चुनौतियों के सन्दर्भ में पुनर्प्रतिष्ठा होती है।

प्रिय विद्यार्थियों! आपने मन में यह प्रश्न आ रहा होगा कि ए. के. सरण के परम्परा पर बल देते से आधुनिक सामाजिक जीवन को क्या लाभ प्राप्त होगा? इस प्रश्न का उत्तर आप उनके द्वारा प्रस्तुत परम्परा की परिभाषा में पा सकते हैं–

सही अर्थों में परम्परा न तो पुरातन होती है और न नवीन व आधुनिक होती है और न आधुनिकता विरोधी। वह तो शाश्वत, सार्वभौम तथा पवित्र है। इसलिए जब प्रतिभाशाली लोग पंरपरा को पूर्ण रूप से जान लेते हैं तो इसलिये उसमें रंग जाना एक सहज प्रक्रिया होती है।

**बोध प्रश्न :**

1. एक भारतविद के रूप में एक0के. सरण का अध्ययन क्षेत्र है–
   (क) कला एवं मिथक परम्परा, (ख) भाषा विज्ञान,
   (ग) समाजशास्त्र (घ) इतिहास
2. निम्न में से कौन सी रचना ए.के0सरण की नहीं है–
   (क) ट्रेडिशन विजन ऑफ मैन (ख) हिन्दूइज्म इन कन्टेम्पोरेरी इण्डिया
   (ग) आर्ट एवं स्वदेशी (घ) इनवॉयरनमेण्टल साइकोलॉजी

## 4.4 धर्मपाल

### 4.4.1 परिचय

धर्मपाल (19 फरवरी, 1922–24 अक्टूबर, 2006) प्रसिद्ध भारतविद के रूप में जाने जाते हैं। बचपन से ही गाँधी के प्रभाव में आने के कारण ही आपने भारत की विरासत् को समझने के यत्न किये। आप जीवन भर आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य में भारतीय पारम्परिक वैज्ञानिकता की खोज में सन्नद्ध रहे। 1942 के 'अंग्रेजों भारत छोड़ो' आंदोलन के समय आप गाँधी के सम्पर्क में आये और स्वतन्त्रता आंदोलन में हिस्सा लेने के लिए अपनी पढ़ाई छोड़ दी। इस समय वे बी0एससी0 भौतिक विज्ञान के छात्र थे। इसके बाद वे सुचेता कृपलानी और मीरा बेन के साथ जुड़कर भारतीय ग्रामीण जीवन के अध्ययन का कार्य करने लगे। आपने रूड़की–हरिद्वार मार्ग पर स्थित किसान आश्रम में तीन वर्षों तक यह कार्य किया1949 में इंग्लैण्ड तथा इजराइल की संक्षिप्त यात्रा के पश्चात् आप पुनः भारत लौटे और राजस्थान, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, उड़ीसा आदि प्रदेशों में गाँवों और पंचायतों में ग्रामीण जीवन प्रणाली, मूल्य, संवादधर्मिता आदि का विशेष अध्ययन किया1957 में आपको 'एसोसियेशन ऑफ वॉलण्ट्री एजेन्सीज फॉर रूरल डेवलपमेण्ट (एवार्ड) का मन्त्री पद दिया गया1960 से 1966 तक आपने इग्लैण्ड

और मुख्यतया लंदन में रहकर 'ब्रिटिश इण्डिया ऑफिस' तथा अन्य अनेक अभिलेखागारों में रहकर अंग्रेज अधिकारियों द्वारा ब्रिटेन के उच्च अधिकारियों को प्रेषित पत्रों एवं दस्तावेजों का अध्ययन कियाउस दौरान आपने हजारों दस्तावेजों की छायाप्रति बनाई, हाथ से उसकी नकल उतारी और सन्दर्भों के लिये कोलकाता, लखनऊ, मुंबई, दिल्ली और चेन्नई के अभिलेखागारों से भी नये दस्तावेज जुटाये। इन्हीं दस्तावेजों के आधार पर धर्मपाल ने बाद में विभिन्न पुस्तकों (आगे उल्लिखित) का प्रणयन कियाजिनमें वे भारत में ब्रिटिश राज्य के आगमन के पूर्व की शिक्षा व्यवस्था, समाज, राज्य एवं विधि व्यवस्था, वैज्ञानिक एवं तकनीकी विशेषज्ञता आदि का सप्रमाण विश्लेषण करते हैं। इसके अतिरिक्त धर्मपाल भारतीय चित्त के विकास का भी विश्लेषण करते हैं तथा हिन्दू सभ्यता के दार्शनिक तत्त्वों पर प्रकाश डालते हैं।

### 4.4.2 लेखनकर्म

धर्मपाल के द्वारा लिखित मूलतः अंग्रेजी में लिखी गयी हैं, इन पुस्तकां को 'धर्मपाल समग्र लेखन' श्रृंखला के अन्तर्गत पुनरुत्थान विद्यापीठ द्वारा अनूदित कर प्रकाशित किया जा चुका है।

1. भारतीय चित्त, मानस एवं काल
2. 17वीं शताब्दी में भारत में विज्ञान एवं तन्त्रज्ञान : कतिपय समकालीन यूरोपीय वृत्तान्त। Indian ScienceAnd Technology in the Eighteenth Century : Some Contemporary EuropeanAccounts.
3. भारतीय परम्परा में सहयोग Civil Disohidience in Indian Tradition
4. स्मरणीय वृक्ष : 12वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा। The Beautiful Tree : Indigenous Indian Education in the Eighteenth Century.
5. पंचायत राज एवं भारतीय तन्त्र। PUnchayat RajAnd Indian Polity
6. भारत में गोहत्या का अंग्रेजी मूल। The British origin of Cow slaughter in India
7. भारत की लूट एवं बदनामी : 19वीं शताब्दी की अंग्रेजों की जिहाद। DespoliationAnd Deforming of India : the Early nineteenth century of British Crusade.
8. गाँधी को समझें। Understanding Gandhi
9. भारत की परम्परा। Essays in Tradition, RecoveryAnd Freedom
10. भारत का पुनर्बोध। Rediscovering India

### 4.4.3 प्रमुख योगदान

विश्व में प्रत्येक राष्ट्र की अपनी एक विशिष्ट पहचान होती है। यह पहचान उसकी जीवनशैली परम्परा मान्यताओं, दैनंदिन व्यवहार, जीवन मूल्यों, जीवन दर्शनों आदि द्वारा निर्मित होती है। धर्मपाल के इतिहास लेखन में इन सभी तत्त्वों पर सन्तुलित बल दिया गया है। अभी तक भारत को समझने के लिए जो इतिहास लेखन हुआ है वह या तो पश्चिमी दृष्टिकोण तथा प्रतिमान पर आधारित है या निष्कर्षों को पुष्ट करने के लिए अध्ययन हुए हैं। एक दूसरी भी धारा दिखाई देती है जिसमें भारतीय इतिहास के सच्चे स्वरूप को उजागर करने का प्रयास किया तो गया है किंतु उनका लेखन

वर्तमानकालीन इतिहास लेखन में उभर नहीं पाया है। जहाँ तक राष्ट्रवादी इतिहास लेखकों का प्रश्न है, कहीं–कहीं कमजोर ऐतिहासिक साक्ष्य होने के कारण अकादमिक जगत में उनके लेखन को महत्त्व कम दिया गया है। धर्मपाल का योगदान इसी अन्तराल को पाटने में है।

### 4.4.4 विचार एवं अध्ययन विधि

धर्मपाल का भारतीय इतिहास नवलेखन में युगान्तकारी प्रस्थान प्रस्तुत करता है। धर्मपाल ने भारत को देखने की भारतीय विधि सिखायाँ धर्मपाल के अध्ययन से जो महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक तथ्य प्राप्त होते हैं वह बिन्दु रूप में निम्नवतहैं–

18 वी शताब्दी का भारत साक्षरता के मामले में यूरोप से कहीं आगे था इतना ही नहीं भारत की शिक्षा व्यवस्था में सभी जातियों, सभी धर्मों के विद्यार्थियों का प्रवेश होता था दक्षिण भारत के विद्यालयों की रिपोर्टों के आधार पर धर्मपाल ने यह निष्कर्ष प्राप्त किया कि किसी किसी विद्यालय में उच्च कही जाने वाली जातियों से ज्यादा निम्न जातियों के बच्चों की संख्या थी।इस प्रकार से धर्मपाल की सूची से इस भ्रम का खण्डन होता है कि भारतीय शिक्षा व्यवस्था में जातीय भेदभाव था।

'18 वीं शताब्दी में यन्त्र ज्ञान एवं तकनीकी' नामक पुस्तक में धर्मपाल ने भारत में इस्पात उत्पादन की उन्नत विधि, कृषि की उन्नत स्थिति, गारा और मोटार बनाने की उन्नति विधि, बर्फ और कागज बनाने की दशाओं का व्यापक अध्ययन प्रस्तुत किया है, जिससे 18वीं शताब्दी में विज्ञान और तकनीकी की भारतीय स्थिति यूरोप की विधि से बेहतर प्रतीत होती है।

'भारत की राजनीतिक विधि' में भारतीय जनमानस में गणतन्त्र की स्थापना पंचायती राज का स्वभाविक स्थापना तथा असहयोग आंदोलन की भावना जैसी प्रमुख उदाहरण सामने आते हैं। धर्मपाल ने यह भी निष्कर्ष निकाला कि भारत में गोवध की परम्परा और उसका संस्थागत रूप देने में अंग्रेजों का ही प्रमुख योगदान है।

'भारत की बदनामी एवं लूट' नामक पुस्तक में धर्मपाल लिखते हैं–सुश्री केथरीन मेयो से एक अमेरिकी ने 1920 में भारत भ्रमण कर एक पुस्तक प्रकाशित की थी इस पुस्तक का शीर्षक था 'भारत माता'Mother Indiaउस पुस्तक में भारत की अत्यन्त अपमानजनक छवि प्रस्तुत की गई थी। इसी प्रकार से विलियम विल्सबोर्ड (1813) जेम्स मिल (1817) एवं टी बी मैकाले (1835) ने भी भारत के बारे में जहरीले लेखन किये थे। उन्होंने यह सिद्ध करने का प्रयास किया कि भारत की अव्यवस्था की उत्कृष्ट बातें भी निकृष्ट ही थीं।

मुझे ज्ञात हुआ कि किस प्रकार देश अज्ञान एवं गरीबी मैं के गर्त में धकेला गया, कैसे यहाँ के हजारों वर्षों के प्राकृतिक संसाधनों', कृषि एवं उद्योगों की रक्षा की गई, ज्ञान की महान परमपरा को नष्ट किया गया उसे घिसी–पिटी एवं मृत करार दिया गया तथा जीवन को कुपोषण एवं दुर्व्यवहार के माध्यम से इस प्रकार से पदावनत किया गया ताकि आगे की पीढ़ियों तक इनकी पूर्व प्रतिष्ठा न हो। इस मानसिकता को तोड़ने के लिए गाँधी ने एक विवेकशील पद्धति को अपनायाँ 1915 में दक्षिण अफ्रीका से भारत लौटने के बाद उन्होंने भारतीय जनमानस को जगाया, उसकी भावनाओं को अपने वाणी और व्यवहार में अभिव्यक्त कर भारत के लिए योग्य हजारों वर्षों की परम्परा के अनुसार व्यवस्थाओं, गतिविधियों और पद्धतियों को प्रतिष्ठित किया और भारत को फिर से भारत बनाने का प्रयास किया स्वतन्त्रता के साथ स्वराज को भी

लाने के लिए, परन्तु स्वतन्त्रता मात्र सत्ता का हस्तान्तरण ही बनकर रह गया उसके साथ स्वराज नहीं आया भारत की 80% जनसंख्या यूरोपीय विचार और शैली जानती भी नहीं और मानती भी नहीं।उनके रीति–रिवाज, मान्यताएँ, पद्धतियाँ और संस्थाएँ सब वैसी की वैसी हैं, केवल शिक्षित लोग उन्हें पिछड़ा कहकर आलोचना करते हैं।

धर्मपाल ने अपनी पुस्तकों में क्रमबद्ध और विस्तृत रूप से अध्ययन करते हुए यह दिखाने का प्रयास किया है कि भारत में जब अंग्रेज आए तो उन्होंने सभी व्यवस्थाओं को तोड़ने के लिए कैसी चालबाजियाँकीं, कैसा छल और कपट किया, क्तिने अत्याचार किए और किस प्रकार धीरे–धीरे भारत टूटता गया, किस प्रकार बदलती परिस्थितियों की अवस्था को स्वीकार करता गयाइन सभी तथ्यों का उद्घाटन धर्मपाल ने अपने अभिलेखों में प्रमाण सहित किया है।

'भारत की पराजय के कारण उसके ज्ञान और शिक्षा के स्तर पर दो बातें हुई। पहली यह कि परम्परागत भारतीय विद्वान सामाजिक क्षेत्र से अलग थलग हो गए और नए संकटपूर्ण वातावरण में जिस हद तक सम्भव था उस हद तक अपने को बचाते हुए धार्मिक पुस्तकों और कर्मकाण्ड में सीमित होते चले गएँ दूसरी बात यह हुई कि 1830 के बाद अंग्रेजों ने भारत में एक नया शिक्षित वर्ग पैदा करना शुरू कियायह वर्ग बहुत चुने हुए अंग्रेजी शैक्षिक और सांस्कृतिक साहित्य के आधार पर पनपा है। इन अभिजात शिक्षितों ने फिर शिक्षितों की अगली जमात खडी की और चार छह पीढियों के भीतर जो नया शिक्षित विद्वत् वर्ग उभर कर आया वह वही कुछ जानता और मानता है जो एक सीमित अंग्रेजी साहित्य के आधार पर उसे बताया गया है। यह हो सकता है कि इस शिक्षित वर्ग में कुछ प्रतिभाशाली भारतीय अपने आप को अंग्रेजों के बराबर समझने लगे और जब अंग्रेजों ने उन्हें नीचा दिखाने की कोशिश की तो वे उनके आलोचक और विरोधी हो गएँ

इसी सन्दर्भ में 1875 में बंगाल के एक प्रमुख गवर्नर ने लिखा था, 'स्कूल और कॉलेजों में पढकर निकलने वाले लोग एक असन्तुष्ट वर्ग में परिवर्तित हो रहे हैं, इसमें कोई शक नहीं है पर इसकी कुछ वजह शायद यह है कि हमारी शिक्षा विधि, प्रशासन, साहित्य जैसी दिशाओं में कुछ ज्यादा ही प्रवृत्त है, जहाँ उन्हें यह गलतफहमी पालने का मौका मिल जाता है कि वे हमारी बराबरी कर सकते हैं। अब हम उन्हें ज्यादा से ज्यादा व्यावहारिक विज्ञान की दिशा में मोडने की कोशिश करेंगे ताकि वे महसूस कर सकें कि वे हमसे क्तिने निम्न कोटि के हैं। 'प्रो0 जोसेफ नीधन के चीन में विज्ञान एवं सभ्यता' विषयक कार्यों से यह स्वीकार किया जाने लगा था कियूरोप ने 1850 तक विज्ञान एवं तकनीकी के क्षेत्र में जो कुछ भी प्राप्त किया था, वह सबकुछ चीन में बहुत पहले से, 2000 वर्ष पूर्व, (लगभग 450 ई. पू0) से था।

हमें प्राचीन काल में भारत में लोहे और इस्पात के उत्पादन, उसकी श्रेष्ठता और विश्व प्रसिद्धि के बारे में काफी मालूम है। जैसा कि हाल के शोधों से पता लगा है भारत में लोहे का उत्पादन उत्तर प्रदेश के अतिरंजन खेडा जैसे स्थानों पर कम से कम बारहवीं शताब्दी से हो रहा है। लेकिन जिस बात के बारे में ज्यादा जानकारी नहीं है, वह यह कि 1800 के आसपास भी देश में यह उद्योग काफी बड़े क्षेत्र में खूब फल फूल रहा था और उत्पादन की तकनीक के मामले में बहुत उन्नत अवस्था में था। एक मोटे अनुमान के अनुसार 1800के आसपास देश में ऐसी कोई दस हजार भट्ठियाँ थी जहाँ लोहे और इस्पात का उत्पादन होता था और एक साल में 35 सप्ताह तक काम

करएक भट्टी में बीस टन श्रेष्ठ इस्पात पैदा किया जा सकता था। ये भट्ठियाँ काफी हल्की होती थीं और उन्हें बैलगाड़ी में लाद कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाया जा सकता था।'

''बहुत से लोगों को यह सुनकर आश्चर्य होगा कि 18वीं शताब्दी में भारत में कृत्रिम तरीके से पानी को ठण्डा करके बर्फ बनाई जाती थी। ऐसा हिमालय जैसे ठण्डे इलाकों में नहीं बल्कि इलाहाबाद जैसे गरम मौसम वाले इलाकों में होता था। 18वीं शताब्दी में चेचक के टीके लगाने और प्लास्टिक सर्जरी की प्रथा के सुश्रुत और चरक के सैकड़ों साल बाद भी व्यवहार में होने की खबरें भी बहुतेरे लोगों को चक्ति कर सकती हैं। इनकी तरफ अंग्रेज अधिकारियों का ध्यान सब से पहले पुणे में गया था। इसी तरह का आश्चर्य उस समय की भारतीय कृषि की प्रौद्योगिकी तथा खेती के उन्नत औजारों और ऊँची उत्पादकता के बारे में जानकर हो सकता है। सन् 1800 से पहले के एक अंग्रेज कलेक्टर खेती के औजार, जिनमें बरमे वाला हल शामिल था, मद्रास प्रेसीडेंसी के जिलों से ब्रिटेन भेजे थे ताकि वहाँ के खेती के औजारों में कुछ सुधार किए जा सकें।'

ऐसी स्थिति में जब हम भारतीय आधुनिक इतिहास लेखन का अध्ययन करते हैं तो प्रायः यह प्रतीत होता है कि भारत पिछड़े से विकास की ओर विकसित् हो रहा है।यह विकास यूरोपीय शासन सत्ता द्वारा लाए गए यूरोपीय ज्ञान परम्परा पर आधारित है। यह निष्कर्ष भारतीय सभ्यता के मूल चरित्र के बिल्कुल उलट है। ऐसे में भारतीय संस्कृति के उदार स्वरूप को इतिहास लेखन के आधुनिक प्रतिमान द्वारा भी सिद्ध किया जा सकता है। कम से कम धर्मपाल के शोध के सामने आने के बाद इस क्षेत्र में अध्ययन की सम्भावना और पुष्ट होती हुई दिखाई दे रही हैं। जिस विधि से धर्मपाल ने इतिहास की अनुशासनात्मक सीमा के अन्तर्गत जो क्रान्तिकारी निष्कर्ष निगमित किए हैं, उसी विधि को अपनाकर भारतीय संस्कृति के स्वरूप को उजागर किया जा सकता है।

**बोध प्रश्न :**

1. धर्मपाल की प्रसिद्ध पुस्तक 'द ब्यूटीफुल ट्री' का अध्ययन विषय है–
   क) प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था
   ख) मध्यकालीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था
   ग) पूर्व औपनिवेशिक शिक्षा व्यवस्था
   घ) अंग्रेजी शिक्षा व्यवस्था।
2. धर्मपाल की प्रसिद्ध पुस्तक 'इण्डियन साइंस एँड टेक्नोलॉजी इन दी एटिन्थसेन्चुरी' का प्रकाशन वर्ष क्या है।
   (क) 1930 (ख) 1916 (ग) 1971 (घ) 1951
3. 18वीं शताब्दी तक भारत के विद्यालयों सम्बन्धी कौन कथन असत्य है।
   क) विद्यालयों में सभी वर्णों जातियों का प्रवेश होता था।
   ख) कहीं कहीं शूद्र छात्रों की संख्या ब्राह्मण छात्रों के बराबर या अधिक थी
   ग) विद्यालय का प्रबन्धन एक स्वायत्त संस्था के रूप में था जिसका प्रबन्धन समाजिक या व्यक्तिगत रूप से होता था।

घ) शूद्रों को शिक्षा से वंचित् किया गया था।

4. धर्मपाल के लेखक से क्या उद्घाटित नहीं होता है।

क) भारत में उच्चकोटि की धात्विक तकनीकी थी।

ख) भारत में उच्च्चकोटि की चिक्तिसा पद्धति उन्नत थी।

ग) भारत में सुसंगठित शिक्षा प्रणाली थी।

घ) भारत ज्ञान और विज्ञान के क्षेत्रों में पिछड़ा हुआ था।

## 4.5 डॉ. विद्यानिवास मिश्र

### 4.5.1 परिचय

डॉ. विद्यानिवास मिश्र (14 जनवरी, 1926–14 फरवरी, 2005) भारतीय चिन्तन परम्परा का पुनरावगाहन करने के लिये जाने जाते हैं। डॉ. मिश्र का जन्म गोरखपुर जनपद के पकड़डीहा गाँव में हुआ। आपने प्राथमिक शिक्षा गाँव पर, माध्यमिक शिक्षा गोरखपुर तथा उच्च शिक्षा वाराणसी में प्राप्त की। 1945 ई. में प्रयाग विश्वविद्यालय से संस्कृत विषय में एम0 ए. कियाआपने सर्वप्रथम भाषा सेवा के क्रम में कोश–निर्माण का कार्य कियाहिन्दी साहित्य सम्मेलन में राहुल सांकृत्यायन के सान्निध्य में हिन्दी शब्दकोश के सम्पादन के पश्चात आपने आकाशवाणी में पं0 श्रीनारायण चतुर्वेदी की प्रेरणा से कोश का सम्पादन कियाइसके बाद आप विंध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश के सूचना विभाग में कार्यरत रहे। 1957 से आपने विश्वविद्यालय स्तर पर अध्यापन का कार्य आरम्भकियाआप गोरखपुर विश्वविद्यालय, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, आगरा विश्वविद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में प्राध्यापक, आचार्य, अतिथि आचार्य आदि रूप में कार्यरत रहे और संस्कृत तथा भाषा विज्ञान का अध्यापन किया

1960–1961 और 1967–1968 में आप कैलीफोर्निया तथा वाशिंगटन विश्वविद्यालय, अमेरिका में अतिथि अध्यापक रहे। आप केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, आगरा के निदेशक तथा काशी विद्यापीठ एवं संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के कुलपति भी रहे। पत्रकारिता के क्षेत्र में भी आपका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। आप नवभारत टाइम्स के प्रधान सम्पादक, साहित्य अमृत (मासिक) के संस्थापक सम्पादक, 'इनसाइक्लोपीडिया ऑफ हिन्दूइज्म' जैसे महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ के सम्पादक रहे। आप इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला केन्द्र, दिल्ली, वेद पुराण संस्थान, नैमिषारण्य के मानद सलाहकार रहने के साथ ही साहित्य अकादमी दिल्ली के वरिष्ठ महत्तर सदस्य एवं उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी के सदस्य भी रहे।

### 4.5.2 लेखनकार्य

'शेफाली झर रही है', 'गाँव का मन', 'छितवन की छांह', 'कदम की फूली डाल', 'तुम चन्दन हम पानी', 'आँगन का पंछी और बनजारा मन', 'साहित्य की चेतना', 'मेरे राम का मुकुटथींग रहा है', 'परम्पराबन्धन नहीं', 'अस्मिता के लिए', 'देश धर्म और साहित्य' आदि आपके प्रमुख निबन्ध संग्रह हैं। साहित्य एवं भाषा विज्ञान के क्षेत्र में आपने 'दी डिस्क्रिप्टिव टेकनीक ऑफ पाणिनि', 'रीति विज्ञान', 'भारतीय भाषा–दर्शन की पीठिका', 'हिन्दी की शब्द सम्पदा' आदि आपके प्रमुख शोध हैं। एक सम्पादक के रूप में आपने 'रसखान रचनावली', 'रहीम ग्रन्थावली', 'देव की दीपशिखा', 'आलम ग्रन्थावली', 'नई कविता की मुक्त धारा' जैसे ग्रन्थों का सम्पादन किया है। आपके हृदय का परिचय आपके काव्य–संग्रह 'पानी पुकार से' मिलता है।

### 4.5.3 योगदान

भारतीय संस्कृति की लोकधारा के महत्त्व को समझने और समझाने के प्रयत्न आप जीवनपर्यंत करते रहे। आधुनिक सामाजिक जनजीवन के परिप्रेक्ष्य में भारतीय परम्पराओं के महत्त्व को स्थापित करने की ललक ही आपकी रचनाओं की केन्द्रीय सम्वेदना है। इस क्रम में आपने ललित निबन्ध की विधा को अपनाते हुये उसे एक नया आयाम दियाँ

साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में आपके द्वारा किये गये अमूल्य योगदान के कारण ही आपको भारतीय ज्ञानपीठ का 'मूर्तिदेवी पुरस्कार' के. के. बिड़ला फाउडेशन का 'शंकर सम्मान', असर प्रदेश संस्कृत, अकादमी का सर्वोच्च 'विश्वभारती सम्मान', 'भारत भारती सम्मान', 'महाराष्ट्र भारती सम्मान', 'हेडगेवार प्रज्ञा पुरस्कार', हिन्दी साहित्य सम्मेलन का 'मंगला प्रसाद पारितोषिका सम्मान' आदि पुरस्का/सम्मान प्राप्त हुये। आपको भारत सरकार द्वारा 1987 में 'पद्मश्री' एवं 1999 में 'पद्मभूषण' सम्मान से सम्मानित किया गयाअगस्त् 2003 में आपको भारत के राष्ट्रपति द्वारा राज्यसभा के लिये भी नामित किया गया।

### 4.5.4 विचार एवं अध्ययन विधि

डॉ. विद्यानिवास मिश्र ने आधुनिकीकरण के आलोक में भारतीय परम्परा और संस्कृति के महत्त्व को समझने और समझाने के प्रयत्न अपने रचना कर्म में किये हैं। इसी क्रम में आप हिन्दू धर्म के स्वरूप, लक्षण और मूल आधारों की विवेचना अपनी पुस्तक 'हिन्दू धर्मः जीवन में सनातन की खोज' में करते है। जिसमें आपने न केवल हिन्दू धर्म को वर्तमान आलोचनात्मक परिवेश में समझाने (विशेषकर अहिन्दुओं/विदेशियों) का प्रयत्न किया है बल्कि हिन्दू धर्म में दिख रहे ऊपरी अन्तर्विरोधों की भी सटीक व्याख्या की है। इस सन्दर्भ में आपका कथन द्रष्टव्य है–''यदि हिन्दू ज्ञान–विज्ञान की सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि आज को प्रासंगिकता रखती है, वह है हिन्दूधर्मसे अभिभावित उसका सर्वभूतात्मक समस्त् जड़ चेतन सत्ताओं में एक जीवनधारा, एक चैतन्य प्रवाह को स्पन्दित देखना (समस्त् क्षणों में एक सनातन देखना), समस्त् में एक महासागर देखना।'' अन्यत्र भी वे इसके महत्त्व की प्रतिष्ठा करते हुये लिखते हैं– ''हिन्दू धर्म का महत्त्व मेरे लिये इसी से है कि यह चरम मानव–मूल्य स्वाधीनता के लिए एक नक्शा प्रस्तुत करता है, इस नक्शे के अनुसार चलकर अन्वेषण करने वाला इस नक्शे में तरमीम करता चलता है। हिन्दू धर्म इस अन्वेषण को रसमय भी बनाता है, उसकी भक्ति भोग–विमुख भोग और काम–विजयी काम का आस्वादन कराती है।''

इस पुस्तक में मिश्र जी ने हिन्दू धर्म के सामान्य लक्षणों की चर्चा करते हुये जीवन में निरन्तरता और अखण्डता का अनुभव करते रहना, कर्मवाद, आनृण्य व्यवस्था (ऋण से उऋण होना), पुरुषार्थ की सारगर्भित विवेचना की है। हिन्दू धर्म को एक जीवन शैली मानते हुये मिश्र जी ने माना है कि सत्य, प्रिय और ऋत तीनों न केवल समरस भाव में हों बल्कि समय–सापेक्ष भी हों यही सनातन धर्म का मूल (सामान्य) धर्म है, जो कालातीत है। इसके अतिरिक्त वे इसी क्रम में दैनन्दिनजीवन और अवसर विशेष पर किये जाने वाले कर्मों के पीछे के दर्शन को समझाते हैं और संस्कार, यज्ञ, उपासना, भक्ति तीर्थ, पर्व एवं उत्सवों के कारण और प्रभाव तक की व्याख्या करते हैं। विस्तृत अध्ययन के लिये विद्यार्थियों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये।

इस प्रकार मिश्र जी हिन्दू धर्म को संक्षेप में पूरी तरह से समझाते हैं, उसके अन्तर्विरोधों की व्याख्या करते हैं और इसमें समयानुरूप परिवर्तन की आवश्यकता को भी बतलाते हैं। इसी परिवर्तन को वह सनातन धर्म की शक्ति का मूलस्रोत मानते हैं और इसके प्रमुख कारक के रूप में वे लोक चेतना (तत्त्व) का महत्त्व स्वीकारते हैं।

उनका कथन द्रष्टव्य है–''शास्त्र हिन्दू धर्म की दाहिनी आँख है, सूर्य है, सविता है, विवेक है, ज्ञान है, तर्क प्रज्ञा है और लोक उसकी बायी आँख है चन्द्र है, रस है, बहाव है, भाव है;हिन्दू धर्म ज्ञानमय भाव है, न वह ज्ञानरूप है, न विश्वासरूप, न कोरा भावरूप, भाव और ज्ञान अलग होते हैंतो हिन्दू धर्म खंडित होता है। जब–जब ऐसे खण्डन के अवसर आये हैं, तब–तब लोक ने अपने–आपको मथा है।'' उनका मानना है कि शास्त्रों की जड़ता को इस समय स्वरूप में परिवर्तित करके लोकतत्त्व ने उसे (शास्त्रों को) आज तक अक्षुण्ण रूप से सुरक्षित रखने का कार्य किया है– ''जिसे हम लोक्तत्त्व कहते हैं, वह शास्त्र का ही विसरण है, . . . उसमें शास्त्र का सत्त्व अधिक सुरक्षित है, शास्त्रों का जिस रूप में अध्ययन और विवेचन हो रहा है, उसमें कम सुरक्षित है।''

मिश्र जी इसी लोकतत्त्व को विस्तार से समझाने का यत्न यत्र–तत्र करते रहते हैं। लोक शब्द की व्युत्पत्ति, अर्थ–विस्तार तथा महत्त्व को समझाते हैं। बताते है कि 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति 'सच्/लुच्'धातु से है, जिसका अर्थ प्रकाशित होना है, और प्रकाशित करना भी है। लोक अपने में विशाल अर्थक्षेत्र समेटता है।जो भी दृष्टिगत संसार है अथवा जो भी इंद्रियगोचर संसार है, वह लोक है। यह लोक अवधारणा मात्र नहीं, यह कर्मक्षेत्र है। इसीलिए भारतीय परम्परा अपने अवतारों, सन्तों, महापुरुषों को भी लोक के आलोक में ही अपना पाता है और उनका जीवन भी लोक हित में ही समर्पित होता है। ''जीवन की सार्थकता इसी में है कि 'यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते चयः', उससे लोक उद्विग्न न हो और वह स्वयं लोक से उद्विग्न न हो। इसी लोक के भीतर हो होकर लोकोत्तर की राह जाती है।'' हिन्दू धर्म की अविच्छिन्नता का सर्वप्रमुख कारक यह लोक ही है जो परम्परा के रूप में सतत् प्रवाहमय और नित नूतन होता रहता है।

## 4.6 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप भारतविद के रूप में आनंद कुमारस्वामी, ए. के. सरण, विद्यानिवास मिश्र एवं धर्मपाल की रचनाओं, अध्ययन विधि, अध्ययन क्षेत्र एवं अवदान से परिचित् हुए होंगे। कुमारस्वामी ने भारतीय कलाओं एवं आख्यान परम्परा के मर्म को उद्घाटित करते हुये उसकी अभिनव व्याख्या की है। भारतीय कलाओं को वे आन्तरिक और वाह्य जीवन के द्वंद्व का समाधान करते हुये आत्म तत्त्व तक पहुँचने का साधन बताते हैं। वे बताते हैं कि सम्पूर्ण भारतीय परम्परा आध्यात्मिक स्वतन्त्रता की खोज के ही विभिन्न प्रयत्नों का परिणाम है, जो पाश्चात्य परम्परा के व्यक्ति केन्द्रित दर्शन से भिन्न एवं वरेण्य है।

ए.के0सरण पारम्परिक हिन्दू समाज व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों की समाज दार्शनिक व्याख्या उसके मूल प्रश्न 'मैं कौन हूँ'से आरम्भ करते हैं और फिर हिन्दू समाज की महत्त्वपूर्ण स्थापनाओं, वर्णाश्रम, पुरुषार्थ आदि की व्याख्या करते हुये आधुनिक सन्दर्भों में उसकी अर्थवत्ता की स्थापना करते हैं। इस क्रम में वे पुरुषार्थ और तीन चरित्र सिद्धान्त (कीर्के गार्द) की समानता को भी प्रदर्शित करते हैं। सरण की विशिष्टता इस तथ्य में समाहित है कि वे आधुनिक सन्दर्भों में हिन्दू समाज के समक्ष उपस्थित खतरों को बताते हैं और उसके निदान को भी प्रस्तुत करते हैं।

विद्यानिवास मिश्र भारतीय परम्परा के सातत्य को शास्त्र एवं लोक के परस्पर संघात के क्रम में देखते हैं। वे बताते हैं कि शास्त्र जब जड़ हो जाता है, तो वह लोक के आचरण में समयानुरूप परिवर्तित होकर स्वीकृत होता है और इस प्रकार परम्परा का सातत्त्वसुरक्षित रहता है। इसलिए भारतीय समाज की लौकिक परम्पराओं के अध्ययन और विश्लेषण से इस समाज व्यवस्था के मूल सिद्धान्तों को और उसके क्रमिक परिवर्तन को समझा जा सकता है।

धर्मपाल का समग्र लेखन औपनिवेशिक विचार सरणि के द्वारा फैलाये गये विभ्रम का प्रतिपक्ष प्रस्तुत करता है। भारत पर अपने शासन को उचित् ठहराने के लिय ब्रिटिश शासन ने भारतीय शासन, शिक्षा, समाज व्यवस्था और ज्ञान, विज्ञान एवं तकनीकी की परम्परा को न केवल नष्ट किया बल्कि यह भी स्थापित करने के प्रयत्न किये कि भारतीय समाज एक पिछड़ा हुआ समाज था। धर्मपाल ने औपनिवेशिक प्रशासन के ही दस्तावेजी साक्ष्यों का संकलन किया और यह स्थापित किया कि अंग्रेजों के आने के पूर्व भी भारतीय शिक्षा और समाज व्यवस्था सुविकसित् एवं सुसंगठित थी। विज्ञान, तकनीकी, चिक्तिसा एवं उद्योग के क्षेत्र में भारत यूरोपीय देशों से कहीं आगे था। लौह निर्माण, बर्फ निर्माण, चेचक के टीकों का प्रयोग आदि के उदाहरण से वे औपनिवेशिक श्रेष्ठता के सिद्धान्त को चुनौती देकर उसे धराशायी कर देते हैं।

**बोध प्रश्न**

1. विद्यानिवास मिश्र किस विषय के विशेषज्ञ थे–

   (क) संस्कृत एवं भाषा विज्ञान (ख) कला एवं संगीत

   (ग) समाजशास्त्र (घ) इतिहास एवं दर्शन

2. विद्यानिवास मिश्र किन संस्थाओं से जुड़े हुए थे–

   (क) साहित्य अकादमी, दिल्ली

   (ख) इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय कला, केन्द्र, दिल्ली

   (ग) उत्तर प्रदेश संगीत नाटक अकादमी

   (घ) उपर्युक्त में कोई नहीं

3. विद्यानिवास मिश्र ने विदेश के विश्वविद्यालयों में अध्यापन किया–

   1. कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय 2. वाशिंगटन विश्वविद्यालय

   3. टोक्यो विश्वविद्यालय

   (क) केवल (ख) केवल 1 और 2

   (ग) केवल 2 और 3 (घ) 1, 2 और 3

## 4.7 पारिभाषिक शब्दावली

1. आत्म तत्त्व – मनुष्य का आन्तरिक तत्त्व यानि आत्मा
2. मिथक – परम्परा से चली आ रही मान्यतायें
3. राजत्व सिद्धान्त – राज करने का सिद्धान्त
4. ऋत् – सृष्टि की नियामक प्रक्रिया (नियम)
5. सातत्य भग्नता – निरन्तरता को तोड़ने वाले विचार
6. त्रिगुण – सत्व, रज एवं तम
7. भोग–विमुख भोग – कर्म फल की इच्छा समाप्त होने के बाद भी कार्य फल से प्राप्त हुआ भोग
8. काम–विजयी काम – कर्म फल की इच्छा समाप्त होने के बादकर्म फल प्राप्ति का सुख
9. लोक चेतना – सामान्य जन में व्याप्त प्रवृत्ति

10. औपनिवेशिक श्रेष्ठता – पश्चिमी जगत द्वारा फैलायी गयी अवधारणाका सिद्धान्तकि वे श्रेष्ठ मनुष्य हैं और उन्हें अन्य इंसानों पर शासन करने के लिए बनाया गया है।

## 4.8 बोध प्रश्न

1. भारतविद के रूप में आनंद कुमार स्वामी के योगदान तथा उनकी अध्ययन विधि की विवेचना कीजिए?
2. हिन्दू समाजशास्त्र की आधुनिक दृष्टि से व्याख्या करने में ए. के. सरण के योगदान की विवेचना कीजिए?
3. भारतीय तकनीकि एवं वैज्ञानिक विकास के ऐतिहासिक अध्ययन में धर्मपाल के योगदान का महत्त्व बताइए?
4. पूर्व औपनिवेशिक युग की भारतीय शिक्षा व्यवस्था के सम्यक् उद्घाटन में धर्मपाल के योगदान को बताइए?
5. 'सनातन हिन्दू सभ्यता को अध्ययन भारतीय लोक के अध्ययन के पूर्ण होता है।' इस कथन के सन्दर्भ विद्यानिवास मिश्र के योगदान में बताइए?
6. समकालीन हिन्दू सभ्यता की समझ के लिए कुमारस्वामी, ए.के0सरन, धर्मपाल एवं विद्यानिवास मिश्र के चिन्तन के महत्त्व की स्थापना कीजिए?

## 4.9 सहायक उपयोगी पाठ्यसामग्री

1. Coomaras¡myAnanda, The Dance of Shiva
2. Coomaras¡myAnanda, ChristianAnd Oriental Philosophy
3. SaranA.K., Hindustan in Contemporary India ofArt.
4. Coomaras¡myAnanda, HinduismAnd Buddhism
5. Coomaras¡myAnanda,A NewApproach to Vedas
6. SaranA.K., Sociology of KnowledgeAnd Traditional Thought
7. SaranA.K., On the Theories of SeculUrismAnd Modernization
8. धर्मपाल, भारतीय चित्त, मानस एवं काल
9. धर्मपाल, 17वीं शताब्दी में भारत में विज्ञान एवं तन्त्रज्ञान : कतिपय समकालीन यूरोपीय वृत्तान्त
10. धर्मपाल, स्मरणीय वृक्ष : 18वीं शताब्दी में भारतीय शिक्षा
11. धर्मपाल, भारत की लूट एवं बदनामी : 19वीं शताब्दी की अंग्रेजों का जिहाद
12. धर्मपाल, भारत की परम्परा
13. मिश्र विद्यानिवास, क्या पूरब क्या पच्छिम
14. मिश्र विद्यानिवास, हिन्दू धर्म : जीवन में सनातन की खोज
15. मिश्र विद्यानिवास, परम्परा बन्धन नहीं
16. मिश्र विद्यानिवास, देश धर्म और साहित्य